Political History of Gurjar Pratihar

गुर्जर-प्रतिहार वंश के इतिहास के साधन (Tools of History for Gurjar-Pratihar Dynasty):
अग्निकुल के राजपूतों में सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रतिहारवंश था जो गुर्जरों की शाखा से सम्बन्धित होने के कारण इतिहास में गुर्जर-प्रतिहार कहा जाता है । इस वंश की प्राचीनता पाँचवीं शती तक जाती है । पुलकेशिन् द्वितीय के ऐहोल लेख मेंगुर्जर जाति का उल्लेख सर्वप्रथम हुआ है ।

बाण के हर्षचरित में भी गुर्जरों का उल्लेख किया गया है । चीनी यात्री हुएनसांग कु-चे-लो (गुर्जर) देश का उल्लेख करता है जिसकी राजधानी पि-लो-मो-ली अर्थात् भीनमल में थी ।

गुर्जर-प्रतिहार वंश के इतिहास के प्रामाणिक साधन उसके बहुसंख्यक अभिलेख है। इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय मिहिरभोज का ग्वालियर अभिलेख है जो एक प्रशस्ति के रूप में हैं । इसमें कोई तिथि अंकित नहीं है । यह प्रतिहार वंश के शासकों की राजनैतिक उपलब्धियों तथा उनकी वंशावली को ज्ञात करने का मुख्य साधन है ।

इसके अतिरिक्त इस वंश के राजाओं के अन्य अनेक लेख मिलते है जो न्यूनाधिक रूप में उनके काल की घटनाओं पर प्रकाश डालते है । प्रतिहारों के समकालीन पाल तथा राष्ट्रकूटवंशों के लेखों से प्रतिहार शासकों का उनके साथ सम्बन्धों का ज्ञान होता है । उनके सामन्तों के लेख भी मिलते हैं जो उनके साम्राज्य-विस्तार तथा शासन-सम्बन्धी घटनाओं पर प्रकाश डालते है ।

प्रतिहार युग में अनेक साहित्यिक कृतियों की रचना हुई । इनके अध्ययन से भी तत्कालीन राजनीति तथा संस्कृति का ज्ञान होता है । संस्कृत का प्रसिद्ध विद्वान् राजशेखर प्रतिहार राजाओं-महेन्द्रपाल प्रथम तथा उसके पुत्र महीपाल प्रथम के

दरवार में रहा था । उसने काव्यमीमांसा, कर्पूरमन्जरी, विद्धशालभंजिका, बालरामायण, भुवनकोश आदि ग्रन्थों की रचना की थी ।

इनके अध्ययन से तत्कालीन समाज एवं संस्कृति का ज्ञान होता है । जयानक कवि द्वारा रचित 'पृथ्वीराजविजय' से पता चलता है कि चाहमान शासक दुर्लभराज प्रतिहार वत्सराज का सामन्त था तथा उसकी ओर से पालों के विरुद्ध संघर्ष किया था । जैन लेखक चन्द्रप्रभसूरि के ग्रन्थ 'प्रभावकप्रशस्ति' से नागभट्ट द्वितीय के विषय में कुछ सूचनायें मिलती है ।

कश्मीरी कवि कल्हण की 'राजतरंगिणी' से मिहिरभोज की उपलब्धियों का गान प्राप्त होता है । समकालीन अरब लेखकों के विवरण भी प्रतिहार इतिहास पर कुछ प्रकाश डालते हैं । इनमें सुलेमान का विवरण उल्लेखनीय है । वह मिहिरभोज की शक्ति एवं उसके राज्य की समृद्धि की प्रशंसा करता है ।

दूसरा लेखक अलमसूदी है जो दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पंजाब आया था । उसके विवरण से महीपाल प्रथम के विषय में कुछ सूचनायें प्राप्त होती है । प्रायः सभी मुसलमान लेखक प्रतिहारों की शक्ति, देशभक्ति तथा समृद्धि की प्रशंसा करते है । इस प्रकार अभिलेख, साहित्य तथा अरब लेखकों के विवरण, इन तीनों का उपयोग हम प्रतिहारवंश के इतिहास का अध्ययन करने के लिये करते है ।

गुर्जर-प्रतिहार वंश की उत्पत्ति (Origin of Gurjar-Pratihar Dynasty):

विभिन्न राजपूत वंशों की उत्पत्ति के समान गुर्जर-प्रतिहारवंश की उत्पत्ति भी विवादग्रस्त है । राजपूतों की उत्पत्ति के विदेशी मत के समर्थन में विद्वानों ने उसे 'खजर' नामक जाति की संतान कहा है जो हूणों के साथ भारत में आई थी । इस मत का समर्थन सबसे पहले कैम्पबेल तथा जैक्सन ने किया और बाद में भण्डारकर तथा त्रिपाठी आदि भारतीय विद्वानों ने भी इसे पुष्ट कर दिया ।

ADVERTISEMENTS:

किन्तु यह मत कोरी कल्पना पर आधारित है क्योंकि विदेशी आक्रमणकारियों में खजर नामक किसी भी जाति के विषय में हमें भारतीय अथवा विदेशी साक्ष्य से कोई भी सूचना नहीं मिलती । खजर तथा गूजर या गुर्जर में शब्दों के अतिरिक्त कोई भी साम्य नहीं लगता ।

सी. वी. वैद्य, जी. एस. ओझा, दशरथ शर्मा जैसे अनेक विद्वान् गुर्जर प्रतिहारों को भारतीय मानते है । वे इस शब्द का अर्थ 'गुर्जरदेश का प्रतिहार अर्थात शासक' लगाते है । के. एम. मुंशी ने विभिन्न उदाहरणों से यह सिद्ध किया है कि गुर्जर शब्द स्थानवाचक है, जातिवाचक नहीं । 'गुर्जर' शब्द का उल्लेख पाँचवीं-छठीं शती से मिलने लगता है ।

इन विद्वानों का विचार है कि यदि गुर्जर जाति विदेशों से आकर भारतीय क्षत्रिय समाज में समाहित होती तो उसका पुराना नामोनिशान बिल्कुल समाप्त नहीं होता । भारत के शास्त्रकारों ने विदेशियों को सदा पद प्रदान किया है । हूणों को म्लेच्छ कहा गया है । किन्तु जहाँ तक गुर्जरों का प्रश्न है उन्हें सर्वत्र ब्राह्मण कहा गया।

हुएनसांग गुर्जरनरेश को क्षत्रिय बताता है । पृथ्वीराजरासो में अग्निकुल के राजपूतों की जो कथा मिलती है उसकी ऐतिहासिकता संदिग्ध है । दशरथ शर्मा, ओझा आदि ने बनाया है कि इस कथा का उल्लेख रासो की प्राचीन पाण्डुलिपियों में अप्राप्य है । इस प्रकार खजर जाति से गुर्जरों की उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती है ।

साहित्य अथवा इतिहास में कहीं भी उन्हें विदेशियों से नहीं जोड़ा गया है । उनके लेखों से जो संकेत मिलते हैं उनके आधार पर हम उन्हें ब्राह्मण मूल का स्वीकार कर सकते हैं जिन्होंने कालान्तर में क्षात्र-धर्म ग्रहण कर लिया था । तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्रतिहारी नामक वैदिक याजकों का उल्लेख मिलता है ।

लगता है उन्होंने ही बाद में अपने कमी को छोडकर क्षत्रियों की वृत्ति अपना ली तथा अपने को राम के भाई लक्ष्मण से सम्बद्ध कर लिया । गुर्जर-प्रतिहारों ने आठवीं शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक शासन किया । ग्वालियर अभिलेख में इस वंश के शासक राम के भाई लक्ष्मण, जो उनके प्रतिहार (द्वारपाल) थे, का वंशज होने का दावा करते है ।

कुछ विद्वानों के अनुसार इस वंश का आदि शासक राष्ट्रकूट राजाओं के यहाँ प्रतिहार के पद पर काम करता था, अतः इन्हें प्रतिहार कहा गया । गुर्जर-प्रतिहारों का मूल स्थान निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है । स्मिथ, हुएनसांग के आधार पर उनका आदि स्थान आबू पर्वत के उत्तर-पश्चिम में स्थित भीममल मानते है । कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार उनका मूल निवास-स्थान उज्जयिनी (अवन्ति) में था ।

गुर्जर-प्रतिहार वंश के राजनैतिक इतिहास (Political History of Gurjar-Pratihar Dynasty):

i. नागभट्ट प्रथम:

गुर्जर-प्रतिहार वंश का संस्थापक नागभट्ट प्रथम (730-756 ईस्वी) था । वह एक पराक्रमी शासक था । ग्वालियर अभिलेख से पता चलता है कि उसने एक शक्तिशाली म्लेच्छ शासक की विशाल सेना को नष्ट कर दिया । यह म्लेच्छ संभवतः सिन्ध का अरब शासक था ।

इस प्रकार नागभट्ट ने अरबों के आक्रमण से पश्चिमी भारत की रक्षा की तथा उनके द्वारा रौंदे हुए अनेक प्रदेशों को पुन: जीत लिया । ग्वालियर लेख में कहा गया है कि 'म्लेच्छ राजा की विशाल सेनाओं को चूर करने वाला मानो नारायणरूप में वह लोगों की रक्षा के लिये उपस्थित हुआ था ।'

ऐसा प्रतीत होता है कि नागभट्ट ने अरबों को परास्त कर भड़ौच के आस-पास का क्षेत्र छीन लिया तथा अपनी ओर से चाहमान शासक भतृवड्ढ द्वितीय को

वहीं का शासक नियुक्त किया । हांसोट लेख से इसकी पुष्टि होती है जो नागभट्ट के समय में जारी करवाया गया था । इसके पहले अरवी ने जयभट्ट को पराजित कर भड़ौच पर अपना अधिकार कर लिया था ।

किन्तु नागभट्ट ने पुन वहीं अपना अधिकार स्थापित कर भतृवड्ढ को शासक बनाया । नागभट्ट का समकालीन अरब शासक जुनैद था । मुस्लिम लेखक अल् बिलादुरी के विवरण से पता चलता है कि जुनैद को मालवा (उज्जैन) के विरुद्ध सफलता नहीं मिली थी । इस प्रकार गुजरात तथा राजपूताना के एक बड़े भाग का वह शासक बन बैठा ।

ii. वत्सराज:

नागभट्ट प्रथम के पश्चात् उसके दो भतीजों-कुक्कुक तथा देवराज-ने शासन किया । वे दोनों निर्बल शासक थे जिनकी किसी भी उपलब्धि के विषय में हमें ज्ञात नहीं है । इस वंश का चौथा शासक वत्सराज (775-800 ईस्वी) हुआ जो देवराज का पुत्र था । वह एक शक्तिशाली शासक था जिसे प्रतिहार साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक माना जा सकता है ।

उसने कन्नौज पर आक्रमण कर वहाँ के शासक इन्द्रायुध को हराया तथा उसे अपने अधीन कर लिया । ग्वालियर अभिलेख से पता चलता है कि उसने प्रसिद्ध भण्डीवंश को पराजित कर उसका राज्य छीन लिया । कुछ विद्वान् इस वंश की पहचान हर्ष के ममेरे भाई भण्डि द्वारा स्थापित वंश से करते है ।

लेकिन यह संदिग्ध है क्योंकि हम यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि भण्डि ने कोई स्वतंत्र वंश अथवा राज्य स्थापित किया था । कुछ अन्य इतिहासकार इसे जोधपुर लेख में उल्लिखित भट्टिकुल बताते है । इस प्रकार इस विषय में कुछ निश्चित नहीं हो पाता ।

वत्सराज को सर्वाधिक महत्वपूर्ण सफलता गौड़ों के विरुद्ध प्राप्त हुई । राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय के राधनपुर से प्राप्त अभिलेख से ज्ञात होता है कि वत्सराज ने गौड़देश के शासक को पराजित किया था । इसके अनुसार 'मदान्ध वत्सराज ने गौड़ की राजलक्ष्मी को आसानी से हस्तगत कर उसके दो राजछत्रों को छीन लिया था ।'

जयानक कृत पृथ्वीराज विजय से पता चलता है कि उसके सामन्त दुर्लभराज ने गौड़ देश पर आक्रमण कर विजय प्राप्त किया था । मजूमदार का विचार है कि प्रतिहारों तथा पालों के बीच युद्ध दोआब में कहीं हुआ तथा प्रतिहार सेनायें बंगाल में नहीं घुसी । यह वत्सराज की सबसे बड़ी सफलता थी । यह पराजित नरेश पालवंशी शासक धर्मपाल था ।

इस प्रकार वत्सराज उत्तर भारत के एक विशाल भूभाग का स्वामी वन बैठा । परंतु राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव ने उस पर आक्रमण किया तथा युद्ध में बुरी तरह परास्त कर दिया । भयभीत होकर वत्सराज राजपूताना के रेगिस्तान की ओर भाग गया ।

राष्ट्रकूट लेखों-राधनपुर तथा बनी दिन्दोरी, से पता चलता है कि ध्रुव ने वत्सराज को पराजित करने के साथ-साथ उन दोनों श्वेत राजछत्रों को भी हस्तगत कर लिया जिन्हें उसने गौड़नरेश से छीना था । ध्रुव का आक्रमण एक धावा मात्र था।

उत्तर में अपनी शक्ति का अहसास कराने के उपरान्त वह स्वदेश लौट गया । ध्रुव के वापस लौटने के बाद भी वत्सराज अवन्ति पर अधिकार नहीं कर पाया तथा उसकी शक्ति निर्बल बनी रही । इसका लाभ उठाते हुए उसके पाल प्रतिद्वन्दी धर्मपाल ने भी वत्सराज को परास्त किया ।

उसने कन्नौज से वत्सराज द्वारा मनोनीत शासक इंद्रायुध को हटाकर उसके स्थान पर चक्रायुध को शासक बनाया । उसने कन्नौज में एक दरबार किया जिसमें उत्तर भारत के अधीनस्थ राजाओं ने भाग लिया । इसमें वत्सराज को भी उपस्थित होने के लिये बाध्य होना पड़ा तथा उसकी स्थिति अधीन शासक जैसी हो गयी ।

iii. नाग भट्ट-II :

वत्सराज के पश्चात उसका पुत्र नागभट्ट द्वितीय (800-833 ईस्वी) गुर्जर-प्रतिहारों का राजा हुआ । वह अपने वंश की खोई हुई प्रतिष्ठा पुन स्थापित करने में जुटा । ग्वालियर लेख में उसकी उपलब्धियों का वर्णन मिलता है । उसके अनुसार उसने कन्नौज पर आक्रमण कर चक्रायुध को वहाँ से भगा दिया तथा कन्नौज को अपनी राजधानी बनाई ।

नागभट्ट ने अन्य, सिन्ध, विदर्भ तथा कलिंग को भी जीता । लेख में कहा गया है कि इन देशों के राजाओं ने उसके सम्मुख उसी प्रकार आत्मसमर्पण कर दिया जिस प्रकार से पतंग दीपशिखा के समक्ष करते है । ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व में पाली तथा दक्षिण में राष्ट्रकूटों की शक्ति से भयभीत होकर ही इन राज्यों ने प्रतिहार नरेश के समक्ष समर्पण किया होगा ।

अपनी स्थिति मजबूत बना लेने के बाद नागभट्ट ने पाली के विरुद्ध अभियान प्रारम्भ किया जिनके शासक धर्मपाल के हाथों उसके पिता वत्सराज की पराजय हुई थी । मुंगेर के समीप एक युद्ध में उसने धर्मपाल के नेतृत्व में पालसेना को भी पराजित कर दिया ।

इस युद्ध में कक्क, बाहुक धवल तथा शंकरगण उसके सामन्तों ने भी भाग लिया था । चाट्सु लेख में कहा गया है कि शंकरगण ने गौड़नरेश को हराया तथा समस्त विश्व को जीतकर अपने स्वामी को समर्पित कर दिया था ।

यहाँ स्वामी से तात्पर्य नागभट्ट से ही है । इस प्रकार वह उत्तरी भारत का शक्तिशाली शासक बन बैठा । अपनी महानता एवं पराक्रम को सूचित करने के लिये नागभट्ट ने परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर की उपाधि धारण की ।

परन्तु नागभट्ट की शक्ति एवं पराक्रम को राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द सहन नहीं कर सका । अपने पिता की भांति उसने भी उत्तर की राजनीति में हस्तक्षेप किया। सर्वप्रथम उसने अपने भाई इन्द्र को गुजरात का राज्यपाल बनाया तथा फिर पूरी शक्ति के साथ नागभट्ट पर आक्रमण किया । मन्ने, सिसवै तथा राधनपुर के लेखों से इस बात की सूचना मिलती है कि नागभट्ट बुरी तरह पराजित किया गया ।

अल्तेकर का विचार है कि दोनों के बीच युद्ध बुन्देलखण्ड के किसी क्षेत्र में लड़ा गया था । गोविन्द ने चक्रायुध तथा धर्मपाल को पराजित किया और विजय करते हुए हिमालय तक जा पहुँचा । किन्तु सदा की भांति इस बार ही निजी कारणों से राष्ट्रकूटों को दक्षिण लौटना पड़ा ।

इस पराजय से नागभट्ट हताश नहीं हुआ तथा उसने उत्तर भारत के अनेक राज्यों की विजय कर इस क्षति की पूर्ति कर ली । ग्वालियर अभिलेख में उसे आनर्त, किरात, तुरुष्क, वत्स, मत्स्य आदि का विजेता कहा गया है । उसने लगभग उन अभी प्रदेशों को अपने अधिकार में कर लिया जो पहले धर्मपाल के अधीन थे ।

शाकम्भरी के चाहमान शासक भी उसकी अधीनता स्वीकार करते थे । अब नागभट्ट का साम्राज्य हिमालय से नर्मदा नदी तक तथा गुजरात से लेकर बंगाल की सीमा तक विस्तृत हो गया । इस प्रकार वह अपने वंश का एक प्रतापी शासक था जिसने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी ।

iv. रामभद्र:

नागभट्ट द्वितीय के बाद उसका पुत्र रामभद्र गद्दी पर बैठा । वह अत्यन्त दुर्बल शासक था जिसने मात्र तीन वर्षों तक राज्य किया । उसके समय में प्रतिहारों को पाली के हाथों पराजय उठानी पड़ी । नारायणपाल के बादल लेख से सूचित होता है कि देवपाल ने गुर्जर राजाओं के घमण्ड को चूर-चूर कर दिया था । यहां तात्पर्य रामभद्र से ही प्रतीत होता है । किन्तु साम्राज्य के कुछ दूरस्थ प्रदेशों पर उसका अधिकार बना रहा ।

v. मिहिरभोज प्रथम:

रामभद्र का पुत्र और उत्तराधिकारी मिहिरभोज प्रथम (836-885 ईस्वी) इस वंश का सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासक हुआ । वह उसकी पत्नी अप्पादैवी से उत्पन्न हुआ था । लेखों से उसके दो अन्य नाम प्रभास तथा आदिवराह भी मिलते हैं । उसके शासनकाल की घटनाओं की सूचना अनेक लेखों से प्राप्त होती है जिनमें से कुछ स्वयं उसी के तथा कुछ उसके उत्तराधिकारियों के है ।

उसका सर्वप्रमुख लेख ग्वालियर से मिलता है जो प्रशस्ति के रूप में है । लेखों के अतिरिक्त कल्हण तथा अरब यात्री सुलेमान के विवरणों से भी हम उसके काल की घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करते है । राजा बनने के उपरान्त मिहिरभोज का पहला महत्वपूर्ण कार्य साम्राज्य का दृढीकरण था ।

सर्वप्रथम उसने अपने पिता के निर्बल शासन-काल में स्वतन्त्र हुए प्रान्तों को पुन अपनी अधीनता में किया । उसने मध्य भारत तथा राजपूताना में पुन: अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली । उसने कलचुरिचेदि तथा गुहिलोत वंशों के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया ।

इन वंशों के राजाओं ने उसके अभियानों में सहायता दी । ग्वालियर लेख में कहा गया है कि 'अगस्त्य ऋषि ने तो केवल विन्ध्य पर्वत का विस्तार अवरूद्ध किया

था किन्तु इसने (भोज ने) कई राजाओं पर आक्रमण कर उसका विस्तार रोक दिया ।'

उत्तर भारत में किये गये उसके अभियानों में गुहिलवंशी हर्षराज, जो उसका एक सामान्त था, ने भोज की सहायता की थी । चाट्सु लेख के अनुसार उसने उत्तर भारत के राजाओं को परास्त कर भोज को घोड़े उपहार में दिये थे । यह भी वर्णित है कि उसने गौडनरेश को पराजित किया तथा पूर्वी भारत के शासकों से कर प्राप्त किया था ।

कलचुरिवंशी गुणाम्बोधिदेव धो उसका सामन्त था । पहेवा (पूर्वी पंजाब) लेख से सूचित होता है कि हरियाणा प्रदेश उसके राज्य में शामिल था । भोज का एक खण्डित लेख दिल्ली में पुराना किला से मिलता है जो वहाँ उसके अधिकार का सूचक है ।

बी. एन. पुरी का मत है कि ऊणा लेख में उल्लिखित बलवर्मा मिहिरभोज का काठियावाड़ में सामन्त था जिसने अपने स्वामी की ओर से लड़ते हुए हूणों को हराया था । देवगढ़ (झांसी) तथा ग्वालियर के लेखों से भोज का मध्य भारत पर अधिकार पुष्ट होता है । इस प्रकार अपने राज्यारोहण के पश्चात मिहिरभोज ने अपनी राजनीतिक स्थिति विभिन्न क्षेत्रों में काफी सुदृढ बना लिया ।

मिहिरभोज के समय में भी प्रतिहारों की पालों तथा राष्ट्रकूटों के साथ पुरानी प्रतिद्वन्द्विता चलती रही । मिहिरभोज दो पाल राजाओं- देवपाल तथा विग्रहपाल का समकालीन था । एक ओर जहाँ पाल लेख प्रतिहारों पर विजय का विवरण देते है, वहीं दूसरी ओर प्रतिहार लेख पालों पर विजय का दावा प्रस्तुत करते है ।

पालकालीन बादल लेख में कहा गया है कि देवपाल ने गुर्जर नरेश को पराजित किया। इसके विपरीत ग्वालियर लेख में वर्णित है कि 'जिस लक्ष्मी ने धर्म (पाल) के पुत्र का वरण किया था उसी ने बाद में, भोज को दूसरे पति के रूप में चुना ।'

अतः वस्तुस्थिति यह प्रतीत होती है कि प्रारम्भिक युद्ध में तो देवपाल को मिहिरभोज के विरुद्ध सफलता प्राप्त हुई, लेकिन उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी नारायणपाल के समय में अथवा देवपाल के शासन के अन्तिम दिनों में ही मिहिरभोज ने अपनी पराजय का बदला ले लिया । पाल साम्राज्य के पश्चिमी भागों पर उसका अधिकार हो गया ।

मिहिरभोज के दूसरे शत्रु राष्ट्रकूट थे । पालों से निपटने के पश्चात वह राष्ट्रकूटों की ओर मुड़ा । मिहिरभोज दो राष्ट्रकूट राजाओं- अमोघवर्ष तथा कृष्ण द्वितीय का समकालीन था । अमोघवर्ष शान्त प्रकृति का शासक था । उसके समय में मिहिरभोज ने उज्जैन पर अधिकार करते हुए नर्मदा नदी तक धावा बोला ।

बग्गुमा लेख से विदित होता है कि ध्रुव ने उसकी सेना को पराजित कर भगा दिया था । वह ध्रुव राष्ट्रकूटों की गुजरात शाखा का ध्रुव द्वितीय था जो अमोघवर्ष का सामन्त था । लेख से मात्र यही निष्कर्ष निकलता है कि भोज को राष्ट्रकूट क्षेत्रों में कोई सफलता नहीं मिली, तथा उसे क्षणिक पराभव का मुख देखना पड़ा ।

अमोघवर्ष के पुत्र कृष्ण द्वितीय के समय में भी दोनों राजवंशों का संघर्ष चलता रहा । इस समय राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय (878-914 ईस्वी) चालुक्यों के साथ युद्ध में फँसा हुआ था । भोज ने उस पर आक्रमण कर नर्मदा नदी के तट पर उसे परास्त किया । इस विजय के फलस्वरूप मालवा पर उसका अधिकार स्थापित हो गया ।

इसके बाद वह गुजरात की ओर बढ़ा तथा खेटक (खेड़ा जिला) के आस-पास के भूभाग को जीत लिया । गुजरात शाखा के राष्ट्रकूटों का 888 ईस्वी के बाद कोई उल्लेख नहीं मिलता जो इस बात का सूचक है कि यह प्रदेश प्रतिहारों ने जीत लिया था । राष्ट्रकूट अभिलेखों देवली तथा करहाट से पता चलता है कि भोज तथा कृष्ण के बीच उज्जयिनी में एक भीषण युद्ध हुआ जिसमें कृष्ण ने भोज को भयाक्रान्त कर दिया ।

किन्तु ऐसा लगता है कि इस युद्ध का कोई निर्णायक परिणाम नहीं निकला तथा मालवा पर भोज का अधिकार बना रहा । इसके बाद भी दोनों वंशों में उज्जैन पर अधिकार को लेकर युद्ध होते रहे । लेकिन खेटक के आस-पास का भाग पुन राष्ट्रकूटों के हाथों में चला गया ।

910 ई. में हम उत्तरी गुजरात में ब्रह्मवलोक वंश के प्रचण्ड नामक एक नये सामन्त को शासन करते हुए पाते है । इन्द्र तृतीय (914-928 ई.) के समय में गुजरात का शासन सीधे मान्यखेत से होने लगा । 915 ई. में इन्द्र ने वहाँ एक ब्राह्मण को दिये गये दान की पुष्टि की जो वही उसके अधिकार का सूचक है ।

इस प्रकार भोज ने उत्तर भारत में एक विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया । उत्तर-पश्चिम में उसका साम्राज्य पंजाब तक विस्तृत था । पूर्व में गोरखपुर के कलचुरि उसके सामन्त थे तथा सम्पूर्ण अवध का क्षेत्र उसके अधीन था । कहल लेख (गोरखपुर जिला) से पता चलता है कि कलचुरिशासक गुणाम्बोधि ने भोज से कुछ भूमि पाई थी ।

जयपुर क्षेत्र का गुहिलोत शासक हर्षराज भी उसका सामन्त था । दक्षिणी राजस्थान के प्रतापगढ से भोज के उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल का लेख मिलता है जो उस भाग पर उसके अधिकार की पुष्टि करता है । बुन्देलखण्ड के चन्देल उसकी अधीनता स्वीकार करते थे ।

दक्षिण में उसका साम्राज्य नर्मदा नदी तक विस्तृत था । उसने कन्नौज को इस विशाल साम्राज्य की राजधानी बनाई तथा लगभग 50 वर्षों तक शासन किया । भोज वैष्णव धर्मानुयायी था तथा उसने 'आदिवाराह' एवं 'प्रभास' जैसी उपाधियाँ धारण की थीं । निश्चयत: वह गुर्जर-प्रतिहारों का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक हुआ । भोज के शासन-काल का अरब यात्री सुलेमान बड़े उच्च शब्दों में वर्णन करता है ।

उसके अनुसार- "इस राजा के पास बहुत बड़ी सेना है । अन्य किसी राजा के पास उसके जैसी अश्वसेना नहीं है । वह अरबों का सबसे बड़ा शत्रु है, यद्यपि वह अरबों के राजा को सबसे बड़ा राजा मानता है । भारत के राजाओं में उससे बड़ा इस्लाम का कोई दूसरा शत्रु नहीं है । वह अपार धन एवं ऐश्वर्य युक्त है । भारत में उसके अतिरिक्त कोई राज्य नहीं है जो डाकुओं से इतना सुरक्षित हो ।"

भोज के लेखों तथा मुद्राओं पर अंकित 'आदिवराह' उपाधि यह सूचित करती है कि देश को म्लेच्छों (अरबों) से मुक्त कराना वह अपना पुनीत कर्तव्य समझता है । अरब उससे बहुत अधिक डरते थे । 915-16 ई. में सिन्ध की यात्रा करने वाले मुस्लिम यात्री अलमसूदी यहां तक लिखता है कि 'अपनी शक्ति के केन्द्र मुल्तान में अरवी ने एक सूर्य मन्दिर को तोड़ने से बचा रखा था । जब भी प्रतिहारों के आक्रमण का भय होता था तो वे उस मन्दिर की मूर्ति को नष्ट कर देने का भय पैदा कर अपनी रक्षा कर लेते थे ।'

विलादुरी कहता है कि अरबों को अपनी रक्षा के लिये कोई सुरक्षित स्थान मिलना ही कठिन था । उन्होंने एक झील के किनारे अलहिन्द सीमा पर अल-महफूज नामक एक शहर बसाया था जिसका अर्थ सुरक्षित होता है । इन विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि भोज ने पश्चिम में अरबों के प्रसार को रोक दिया था । अपने इस वीर कृत्य द्वारा उसने भारत-भूमि की महान् सेवा की थी ।

vi. महेन्द्रपाल प्रथम:

मिहिरभोज प्रथम के बाद उसकी पत्नी चन्द्रभट्टारिका देवी से उत्पन्न पुत्र महेन्द्रपाल प्रथम (885-910 ईस्वी) शासक बना । उसने न केवल अपने पिता से उत्तराधिकार में प्राप्त साम्राज्य को अक्षुण्य बनाये रखा, अपितु पूर्व में उसका विस्तार भी किया ।

महेन्द्रपाल प्रथम के शासन-काल से सम्बन्धित घटनाओं की सुचना देने वाले लेख भोज से अधिक हैं । उसके कई सामन्तों के लेखों में भी उसका उल्लेख मिलता है । लेखों में उसे परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर कहा गया है । दक्षिणी बिहार तथा बंगाल के कई स्थानों से उसके लेख मिलते है ।

इनमें बिहारशरीफ (पटना) से उसके शासन काल के चौथे वर्ष के दो लेख, रामगया तथा गुनरिया (गया) से प्राप्त आठवें तथा नौवें वर्ष के लेख, इटखौरी (हजारीबाग) का लेख तथा पहाड़पुर (राजशाही-बंगाल) से प्राप्त पाँचवे वर्ष का लेख आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

उल्लेखनीय है कि महेन्द्रपाल के पिता भोज का कोई लेख इन क्षेत्रों से नहीं मिलता । अतः यह निष्कर्ष निकालना स्वाभाविक है कि इन स्थानों की विजय महेन्द्रपाल ने ही की थी । उसका पाल समकालीन नारायणपाल एक निर्बल राजा था । मगध क्षेत्र से उसके शासन काल के सत्रहवें वर्ष तक का लेख मिलता है । किन्तु इसके बाद फिर चौवनवें वर्ष का लेख मिलता है ।

इससे सूचित होता है कि इस अवधि (17-54 वर्ष) में मगध क्षेत्र पर प्रतिहारों का अधिकार हो गया था । महेन्द्रपाल ने और आगे विजय करते हुए बंगाल तक का प्रदेश भी जीत लिया होगा जैसा कि उसके पहाड़पुर लेख से प्रमाणित होता है । काठियावाड़, पूर्वी पंजाब, झाँसी तथा अवध से भी उसके लेख मिलते हैं जो उसके साम्राज्य-विस्तार की सूचना देते है ।

मालवा का परमार शासक वाक्पति भी संभवतः उसकी अधीनता स्वीकार करता था । काठियावाड़ के चालुक्य शासक भी उसके सामन्त थे जैसा कि ऊणा लेख से ध्वनित होता है । यही से दो लेख मिलते है जिनमें चालुक्य बलवर्मा तथा उसके पुत्र अवन्तिवर्मा का उल्लेख सामन्त के रूप में मिलता है ।

राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द चतुर्थ के एक लेख में कहा गया है कि कृष्ण द्वितीय ने किसी बड़े शत्रु को पराजित कर खेटकमण्डल (गुजरात) पर अपनी ओर से किसी व्यक्ति को राजा बनाया था । इससे ध्वनित होता है कि उसके पूर्व कुछ समय के लिये महेन्द्रपाल ने गुजरात अन्तर्गत खेटक क्षेत्र को भी जीत लिया था किन्तु बाद में राष्ट्रकूटों का वहाँ अधिकार हो गया ।

इस प्रकार महेन्द्रपाल न एक अत्यन्त विस्तृत साम्राज्य पर शासन किया । उसने जीवन-पर्यन्त अपने शत्रुओं को दबाकर रखा । महेन्दपाल न केवल एक विजेता एवं साम्राज्य निर्माता था, अपितु कुशल प्रशासक एवं विद्या और साहित्य का महान् संरक्षक भी था । उसकी राज्यसभा में प्रसिद्ध विद्वान् राजशेखर निवास करते थे जो उसके राजगुरु थे ।

राजशेखर ने कर्पूरमन्जरी, काव्यमीमांसा, विद्धशालभन्जिका, बालरामायण, भुवनकोश, हरविलास जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की थी । उनकी रचनाओं से कन्नौज नगर के वैभव एवं समृद्धि का पता चलता है । इस प्रकार विभिन्न स्रोतों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महेन्दपाल के शासन-काल में राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से प्रतिहार साम्राज्य की अभूतपूर्व प्रगति हुई ।

कन्नौज ने एक बार पुन: वही गौरव एवं प्रतिष्ठा प्राप्त कर लिया जो हर्षवर्धन के काल में उसे प्राप्त था । यह नगर हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति का केन्द्र वन गया तथा शक्ति और सौन्दर्य में इसकी बराबरी करने वाला दूसरा नगर न रहा ।

vii. महीपाल:

महेन्द्रपाल के पश्चात् प्रतिहार वंश के उत्तराधिकारी का प्रश्न कुछ विवादग्रस्त है । उसकी दो पत्नियों थीं जिनसे दो पुत्र- भोज द्वितीय तथा महीपाल- थे । महेन्द्रपाल के बाद संभवतः कुछ समय के लिये भोज द्वितीय ने शासन किया । उसे अपने सामन्त चेदिनरेश कोक्कलदेव प्रथम से काफी सहायता मिली थी तथा संभवतः उसी की सहायता से भोज ने सिंहासन पर अधिकार जमा लिया था ।

इसका संकेत को कोक्कलदेव के बिल्हारी लेख में हुआ है जहाँ बताया गया है कि समस्त पृथ्वी को जीतकर उसने दो कीर्त्तिस्तम्भ स्थापित किये-दक्षिण में कृष्णराज तथा उत्तर में भोजदेव । वनारस दान पत्र में कहा गया है कि कोक्कल ने भोज को अभयदान दिया था ।

किन्तु भोज मात्र दो वर्षों तक ही शासन कर पाया तथा शीघ्र ही उसका सौतेला भाई महीपाल शासक बना । उसे चन्देल वंश के राजा हर्षदेव से काफी सहायता मिली । संभवतः उसने भोज को पराजित किया तथा सिंहासन पर अधिकार कर लिया । खुजराहों लेख से पता चलता है कि 'हर्षदेव ने क्षितिपाल को सिंहासन पर पुनर्स्थापित किया था' (पुनर्येनक्षितिपालदेवनृपति: सिंहासने स्थापित) यहां क्षितिपाल से तात्पर्य महीपाल से ही है ।

उसने 912 ईस्वी से 944 ईस्वी तक शासन किया । उसका शासन-काल शान्ति एवं समृद्धि का काल रहा । उसने अपने साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखा तथा उसका कुछ विस्तार भी किया । गुजरात जैसे दूरवर्ती प्रदेश पर भी उसका अधिकार बना रहा तथा वही उसका सामन्त धरणिवराह शासन करता था ।

परन्तु पूर्व की भाँति इस समय भी राष्ट्रकूटों ने प्रतिहारों को शान्तिपूर्वक शासन नहीं करने दिया । इस समय राष्ट्रकूट वंश में इन्द्र तृतीय शासन कर रहा था। उसने एक सेना के साथ महीपाल पर आक्रमण किया । खम्भात (काम्बे) दानपत्र

के अनुसार उसने मालवा पर आक्रमण कर उज्जैन पर अधिकार कर लिया तथा उसकी सेना ने यमुना नटी को पार कर कुशस्थल नाम से प्रसिद्ध महोदय नगर (कन्नौज) को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ।

इन्द्र के अभियान में उसके चालुक्य सामन्त नरसिंह ने भी सहायता दी । इसका उल्लेख कन्नडकवि पम्प (941 ई.) ने अपने ग्रंथ पम्पभारत में किया है जो नरसिंह का आश्रित कवि था । इस युद्ध में महीपाल पराजित हुआ तथा जान बचाकर भागा । ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी स्थिति का लाभ उठाते हुए पालों ने भी बिहार के उन क्षेत्रों पर पुन अपना अधिकार कर लिया जिन्हें पहले महेन्द्रपाल ने विजित किया था ।

पाल नरेश राज्यपाल तथा गोपाल द्वितीय के लेख क्रमशः नालन्दा तथा गया से मिलते है । ये दोनों ही महीपाल के समकालीन थे । लेखों की प्राप्ति स्थानों से सूचित होता है कि बिहार का बड़ा भाग पाल अधिकार में चला गया तथा कुछ समय के लिये प्रतिहारों की स्थिति अत्यन्त निर्बल पड़ गयी ।

यह सव राष्ट्रकूटों के आक्रमण का ही परिणाम था । परन्तु इन्द्र तृतीय कन्नौज में अधिक समय तक नहीं ठहर सका तथा उसे शीघ्र ही दक्षिण लौटना पडा । राष्ट्रकूटों के प्रत्यावर्तन के पश्चात् महीपाल ने पुन: अपनी स्थिति सुदृढ़ करना प्रारम्भ कर दिया । चन्देल तथा गुहिलोत वंश के अपने सामन्त शासकों की सहायता प्राप्त कर उसने कन्नौज, गंगा-यमुना के दोआव, बनारस, ग्वालियर तथा पश्चिम में काठियावाड़ तक के प्रदेशों पर पुन अपना अधिकार कर लिया ।

राजशेखर उसे 'आर्यावर्त्त का महाराजाधिराज' कहता है । उसकी विजयों का विवरण देते हुए वह लिखता है यही 'महीपाल ने मरलों के सिरों के वालों को झुकाया, मेकलों को अग्नि के समान जला दिया, कलिंग राज को युद्ध से भगा दिया, करल

राज की केलि का अन्त किया, कुलूतों को जीता, कुन्तलों के लिये परशु का काम किया तथा रमठों की लक्ष्मी को बलपूर्वक अधिग्रहीत कर लिया ।

इनमें मुरल संभवतः नर्मदा घाटी की कोई जाति थी । राजशेखर ने इसे कावेरी तथा वनवासी के मध्य स्थित बताया है । मेकल राज्य नर्मदा के उद्‌गम स्थल अमरकण्टक में स्थित प्रदेश था । कलिंग उड़ीसा में तथा केरल तमिल देश में स्थित था । कुलूत तथा रमठ की स्थिति पंजाब में पानी गयी है ।

संभव है राजशेखर का यह विवरण काव्यात्मक हो, लेकिन इसमें सदेह नहीं कि उपरोक्त प्रदेशों में से अधिकतर पर पहले से ही प्रतिहारों का अधिकार था । संभव है महीपाल की संकटग्रस्त स्थिति का लाभ उठाते हुए कुछ राज्यों ने अपनी स्वाधीनता घोषित कर दी हो तथा शक्तिशाली होते ही महीपाल ने पुन: इन पर अपना अधिकार कर लिया हो ।

इस समय राष्ट्रकूट भी निर्बल स्थिति में थे । उनका शासक गोविन्द चतुर्थ अयोग्य एवं विलासी था । यदि उसकी स्थिति का लाभ उठाते हुए महीपाल ने कुछ दक्षिणी प्रदेशों पर धावा बोला हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है ।

क्षेमीश्वर के नाटक चण्डकौशिकम् में महीपाल को कर्नाट का विजेता बताया गया है । तदनुसार 'चन्द्रगुप्त ने चाणक्य की नीति का पालन करते हुए नन्दों को पराजित कर पाटलिपुत्र को जीता था । वही पुन कर्नाट रूप से पुनर्जात नन्दों का वध करने के लिये, महीपाल रूप में अवतरित हुआ ।'

अधिकांश विद्‌वान इस महीपाल की पहचान प्रतिहार वंशी महीपाल से ही करते हैं । कर्नाट से तात्पर्य राष्ट्रकूट प्रदेश से है । ऐसा प्रतीत होता है कि इन्द्र तृतीय के हाथों अपनी पराजय का बदला लेने के लिये महीपाल ने उसके उत्तराधिकारी के समय में राष्ट्रकूटों पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की थी ।

इसका समर्थन चाट्सु लेख से भी होता है जिसमें कहा गया है कि महीपाल के सामन्त भट्ट ने अपने स्वामी की आशा से किसी दक्षिणी शत्रु को जीता था । मजूमदार के अनुसार यहां तात्पर्य राष्ट्रकूटों से ही है । मुसलमान लेखक अलमसूदी जो 915-16 ईस्वी में भारत की यात्रा पर आया था, महीपाल की अपार शक्ति एवं साधनों की प्रशंसा करना है ।

उसके अनुसार महीपाल के सैनिकों की कुल संख्या सात से नौ लाख के बीच थी जिसे उसने साम्राज्य के चारों दिशाओं में फैला रखी थीं क्योंकि वह सभी ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ था । उसके शत्रुओं में राष्ट्रकूट तथा अरब प्रमुख थे । इन विवरणों से यह सकेत मिलता है कि महीपाल ने अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा पुन स्थापित कर ली ।

ऐसा प्रतीत होता है कि महीपाल की सफलताओं के बावजूद राष्ट्रकूटों के आक्रमण से प्रतिहार को जो आघात पहुँचा उससे वे सम्हल नहीं सके । महीपाल के समय में ही प्रतिहार-साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो गया । चन्देल, परमार तथा चेदि लोगों ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी ।

ऐसे संकेत मिलते है कि उसके शासन के अन्त में कालंजर तथा चित्रकूट के दुर्गों पर से महीपाल का अधिकार जाता रहा । संभव है इसी चिन्ता में उसकी मृत्यु (945 ई. में) हो गयी हो । नि:संदेह उसकी गणना प्रतिहार वंश के महानतम शासकों में की जा सकती है ।

प्रतिहार साम्राज्य का पतन (Decline of Pratihar Empire):

महीपाल के पश्चात् उसका पुत्र महेन्द्रपाल द्वितीय राजा बना जिसने 945-48 ईस्वी तक शासन किया । आर. डी. बनर्जी का विचार है कि राष्ट्रकूट शासक इन्द्र तृतीय के आक्रमण के फलस्वरूप प्रतिहार साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया ।

किन्तु महेन्द्रपाल का एक लेख दक्षिणी राजपूताने के प्रतापगढ़ नामक स्थान से मिलता है जिसमें दशपुर (मन्दसोर) में स्थित एक ग्राम को दान में दिये जाने का उल्लेख है । इससे स्पष्ट है कि महेन्द्रपाल के समय तक प्रतिहारों का मालवा क्षेत्र पर अधिकार पूर्ववत् बना रहा ।

वहाँ उसका सामन्त चाहमान वंशी इन्द्रराज शासन करता था । इसके बाद 960 ईस्वी तक प्रतिहार वंश में चार शासक हुए- देवपाल (948-49 ईस्वी) विनायकपाल द्रितीय (953-54), महीपाल द्वितीय (955 ईस्वी) तथा विजयपाल (960 ईस्वी) ।

इन शासकों के समय में प्रतिहार-साम्राज्य की निरन्तर अवनति होती रही । देवपाल के समय में चन्देलों ने कालंजर का दुर्ग प्रतिहारों से छीन लिया । खजुराहों लेख में चन्देल यशोवर्मन् को 'गुर्जरों के लिये जलती हुई अग्नि के समान' कहा गया है । इससे यह भी सूचित होता है कि अब चन्देल तथा दूसरे सामन्त भी बड़ी तेजी से सिर उठाते जा रहे थे जिन्हें नियंत्रित करने में कोई भी प्रतिहार शासक समक्ष नहीं था ।

विजयपाल के समय तक आते-आते प्रतिहार साम्राज्य कई भागों में बँट गया क्या प्रत्येक भाग में स्वतन्त्र राजवंश शासन करने लगे । इनमें कन्नौज के गहड़वाल, जेजाक-भुक्ति (बुन्देलखण्ड) के चन्देल, ग्वालियर के कच्छपघात, शाकम्भरी के चाहमान, मालवा के परमार, दक्षिणी राजपूताना के गुहिलोत, मध्य भारत के कलचुरिचेदि तथा गुजरात के चौलुक्य प्रमुख है ।

दसवीं शती के मध्य में प्रतिहार-साम्राज्य पूर्णतया छिन्न-भिन्न हो गया । अब यह कन्नौज के आस-पास ही सीमित रहा । राज्यपाल, जो विजयपाल का था, ने 1018 ईस्वी तक कन्नौज पर शासन किया । उसने महमूद गजनवीं के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया तथा पर मुसलमानों का अधिकार हो गया । राज्यपाल अपना शरीर लेकर भाग खड़ा हुआ तथा महमूद ने कन्नौज को खूब लूटा ।

राज्यपाल की इस कायरता पर तत्कालीन भारतीय शासक अत्यन्त कुपित हुए । चन्देल नरेश विद्याधर ने राजाओं का एक संघ तैयार कर उसे दण्डित करने का निश्चय किया । दूबकुण्ड लेख से पता चलता है कि विद्याधर के सामन्त कछवाहा वंशी अर्जुन ने राज्यपाल पर आक्रमण कर उसकी हत्या कर दी थी ।

राज्यपाल के दो उत्तराधिकारी-त्रिलोचनपाल तथा यशपाल-के नाम मिलते है जिनके शासन-काल के विषय में हमारा ज्ञान अत्यल्प है । लगभग 1090 ईस्वी तक वे किसी न किसी रूप में कन्नौज अथवा उसके किसी भाग पर शासन करते रहे । इसके बाद गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य पूर्णरूपेण विलुप्त हो गया तथा कन्नौज में उसके स्थान पर गहड़वाल वंश की स्थापना हुई ।

उत्तर भारत के इतिहास में प्रतिहारों के शासन का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । हर्ष की मृत्यु के बाद प्रतिहारों ने प्रथम बार उत्तरी भारत में एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की तथा लगभग डेढ सौ वर्षों तक वे इस साम्राज्य के अधिष्ठाता बने रहे ।

उन्होंने अरब आक्रमणकारियों से सफलतापूर्वक देश की रक्षा की । मुसलमान लेखक भी उनकी शक्ति एवं समृद्धि की प्रशंसा करते हैं । वे मातृभूमि के सजग प्रहरी थे और इस रूप में उन्होंने अपना प्रतिहार नाम सार्थक कर दिया ।

ग्वालियर प्रशस्ति का यह विवरण मात्र अतिरंजना नहीं लगता है कि 'म्लेच्छ आक्रमणकारियों से देश की स्वाधीनता और संस्कृति की रक्षा करने के लिये नागभट्ट प्रथम तथा द्वितीय एवं मिहिरभोज नारायण, विष्णु पुरुषोत्तम तथा आदि वाराह के अवतार-स्वरूप थे ।'

वस्तुतः यह प्रतिहारों के पराक्रम का ही फल था कि मुसलमानों को, सिन्ध और मुल्तान में अपना राज्य आठवीं शती में स्थापित कर लेने के बाद भी, लगभग

तीन सौ वर्षों तक विस्तार करने का अवसर नहीं मिला तथा वे नियंत्रण में ही बने रहे ।

अनेक विदेशी इतिहासकार इस पर आश्चर्य प्रकट करते है कि जो इस्लाम धर्म विश्व के अन्य धागों में इतनी तेजी से फैल गया, वही भारत भूमि की ओर आसानी से अग्रसर नहीं हो पाया । जितने समय तक प्रतिहारों ने अरबों का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया, उतने समय तक तो कुछ राजवंशों का अस्तित्व ही नहीं रहा ।

शान्ति काल में भी उनकी उपलब्धियां कम सराहनीय नहीं रही । उन्होंने कन्नौज को उसका प्राचीन वैभव न केवल वापस दिया अपितु उसमें इस सीमा तक अभिवृद्धि कर दी कि आचार-विचार, सुसंस्कार एवं सभ्यता की दृष्टि से देश के अन्य भागों के लोग यहाँ के निवासियों का अनुकरण करने लगे । शक्ति तथा सौन्दर्य में इसकी बरावरी करने वाला कोई दूसरा नगर नहीं रहा । कुछ विद्वान् हर्ष के स्थान पर प्रतिहार शासक महेन्द्रपाल प्रथम को ही हिन्दू भारत का अन्तिम महान् शासक स्वीकार करते है ।

गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य के पतन के पश्चात् उत्तर भारत की राजनीतिक दशा:
हर्ष की मृत्यु के उपरान्त प्रतिहारों ने सम्पूर्ण उत्तर भारत में एकछत्र साम्राज्य स्थापित किया । किन्तु विजयपाल (960 ई.) के समय तक आते-आते विशाल प्रतिहार साम्राज्य पूर्णतया छिन्न-भिन्न हो गया तथा उत्तर भारत में पुन राजनैतिक अराजकता एवं अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी ।